Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 2 | November 2024 - April 2025 | pp. 40-47

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र और राजनीतिक शास्त्र

डॉ. विनी शर्मा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र और राजनीतिक शास्त्र का गहरा अंतर्संबंध रहा है। भारतीय समाजशास्त्र न केवल सामाजिक संरचना, वर्ग व्यवस्था, और सांस्कृतिक मूल्यों पर केंद्रित रहा है, बल्कि नैतिकता और आध्यात्मिकता को भी समाज के अभिन्न अंग के रूप में देखता है। ऋग्वेद, उपनिषद, महाभारत, और मनुस्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों में समाज के संगठन और राजनीतिक व्यवस्था की स्पष्ट झलक मिलती है। प्राचीन भारत में सामाजिक व्यवस्था "वर्णाश्रम धर्म पर आधारित थी, जो कर्म और कर्तव्य पर बल देती थी। सामाजिक संतुलन बनाए रखने के लिए पारिवारिक और सामुदायिक उत्तरदायित्वों को सर्वोपरि माना गया। कौटिल्य का अर्थशास्त्र और महाभारत का शांति पर्व राजनीतिक दर्शन के उत्कृष्ट ग्रंथ हैं, जो राज्य की नीतियों, राजा के कर्तव्यों, और प्रशासनिक दक्षता पर प्रकाश डालते हैं। भारतीय राजनीतिक शास्त्र में "धर्म" को शासन का मूल सिद्धांत माना गया। राजा को "धर्म का रक्षक' कहा गया, जिसका उद्देश्य प्रजा की सेवा और न्याय सुनिश्चित करना था। बौद्ध और जैन परंपराओं ने भी अहिंसा, समरसता, और लोककल्याणकारी शासन की अवधारणा को मजबूत किया। मध्यकालीन भारत में मुगल और मराठा शासन ने प्रशासनिक विविधता को जन्म दिया, वहीं आधुनिक काल में महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज और लोकतांत्रिक मूल्यों ने भारत के राजनीतिक दर्शन को एक नई दिशा दी। भारतीय समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र केवल सत्ता और समाज तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे एक नैतिक और आध्यात्मिक चेतना को भी जन्म देते हैं, जो आज भी भारत की लोकतांत्रिक संरचना और सामाजिक ताने-बाने में परिलक्षित होती है। यह शोध भारतीय ज्ञान परंपरा में समाहित समाजशास्त्रीय और राजनीतिक सिद्धांतों के आधुनिक समाज और नीति निर्माण में संभावित योगदान को समझने का प्रयास करता है।*

संकेताक्षर—*राजधर्म, धर्मसत्ता, नैतिकता, शांति पर्व, ग्राम स्वराज्य*

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र और राजनीतिक शास्त्र का गहरा और समृद्ध इतिहास रहा है। यह परंपरा केवल सामाजिक संरचना और शासन व्यवस्था तक सीमित नहीं रही, बल्कि नैतिकता, धर्म, कर्तव्य और लोक कल्याण को भी इसमें समान महत्व दिया गया है। ऋग्वेद, महाभारत, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और बौद्ध-जैन ग्रंथों में समाज के संगठन, राज्य की भूमिका, न्याय, अर्थव्यवस्था, और नीतियों को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समाजशास्त्र न केवल व्यक्ति और समाज के संबंधों को विश्लेषित करता है, बल्कि आत्म-अनुशासन और नैतिकता को समाज में स्थिरता बनाए रखने का आधार मानता है। राजनीतिक शास्त्र की दृष्टि से, प्राचीन भारत में "राजधर्म" और "धर्मसत्ता" की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" में कुशल शासन और प्रशासन की नीतियों का विस्तार से वर्णन मिलता है, जबकि महाभारत का "शांति पर्व" न्याय और नीतिगत फैसलों की दिशा प्रदान करता है। प्राचीन काल से ही भारतीय राजनीतिक चिंतन का

मुख्य उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्ति न होकर प्रजा के कल्याण और सामाजिक न्याय की स्थापना रहा है।

अध्ययन पद्धति

इस शोध के तहत भारतीय समाजशास्त्र और राजनीति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण किया जाएगा।

साहित्य समीक्षा—वेद, उपनिषद, महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य का "अर्थशास्त्र" और अन्य प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन। आधुनिक समाजशास्त्रियों और राजनीतिक चिंतकों के भारतीय समाज और शासन पर विचारों की समीक्षा।

तुलनात्मक विश्लेषण—भारतीय और आधुनिक लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों के बीच समानताओं और अंतरों का विश्लेषण किया जाएगा।

शोध का उद्देश्य

इस शोध के तहत भारतीय समाजशास्त्र और राजनीति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण किया जाएगा। आधुनिक समाजशास्त्रियों और राजनीतिक चिंतकों के भारतीय समाज और शासन पर विचारों की समीक्षा की जाएगी तथा भारतीय और आधुनिक लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों के बीच समानताओं और अंतरों का विश्लेषण किया जाएगा। भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक सिद्धांत किस प्रकार आधुनिक सामाजिक और शैक्षिक सुधारों में सहायक हो सकते हैं? क्या प्राचीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक अवधारणाओं को समकालीन नीतियों और शासन प्रणाली में प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है?

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक अवलोकन

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास—भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है, जिसमें वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक अनेक विचारधाराओं और सिद्धांतों का विकास हुआ। समाज और राजनीति को समझने के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विशद दृष्टिकोण मिलता है।

वैदिक काल (1500 ई.पू.-600 ई.पू.)—वैदिक काल में समाज का संगठन वर्णाश्रम प्रणाली पर आधारित था, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की भूमिकाएँ निर्धारित थीं। ऋग्वेद (ऋ. 10.90) में पुरुषसूक्त के माध्यम से इस समाजिक संरचना का वर्णन किया गया है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥"

(ऋग्वेद 10.90.12)

अर्थ—ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य ऊरु से और शूद्र चरणों से उत्पन्न हुए। राजनीतिक दृष्टि से, राजा को "धर्म" का रक्षक माना गया। ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा की रक्षा और न्याय सुनिश्चित करना है।[1]

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥"

(भगवद्गीता 4.13)

अर्थ—चार वर्णों की रचना मैंने उनके गुण और कर्मों के अनुसार की है; हालांकि मैं इसका कर्ता हूँ, फिर भी मैं अकर्ता और अविनाशी हूँ। इससे स्पष्ट होता है कि मूलतः जाति व्यवस्था कर्म-आधारित थी, लेकिन बाद में यह जन्म-आधारित हो गई, जिससे सामाजिक असमानता उत्पन्न हुई।

महाकाव्य और शास्त्रीय युग (600 ई.पू.-300 ई.)—महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में राजनीति और समाजशास्त्र के विस्तृत सिद्धांत मिलते हैं। महाभारत के "शांति पर्व" में राजधर्म की व्याख्या की गई है—

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मं न तत्तत्वसुखं न यस्मिन्,
न तत्तथार्हं यदनीन्यमुक्तम्॥"

(महाभारत, शांति पर्व 5.38)

अर्थ—वह सभा सभा नहीं जहाँ वृद्ध और ज्ञानी नहीं हैं; वे वृद्ध नहीं जो धर्म की बातें नहीं करते; और वह धर्म, धर्म नहीं, जिससे सत्य और सुख प्राप्त न हो।

रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को एक आदर्श शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने "राजधर्म" और लोककल्याणकारी शासन का पालन किया।[2]

उत्तर-शास्त्रीय युग (300 ई.-1200 ई.)—इस युग में कौटिल्य का "अर्थशास्त्र" शासन और राजनीति के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत करता है। इसमें एक शासक के गुण और कर्तव्यों का उल्लेख है—

"सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूलं राज्यं, राज्यस्य मूलं इन्द्रियजयः॥"

(अर्थशास्त्र, 1.7)

अर्थ—सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ (धन) है, अर्थ का मूल राज्य है, और राज्य का मूल इंद्रियों पर विजय है।

पारंपरिक समाजशास्त्र एवं राजनीतिक शास्त्र के आदर्श

सामाजिक संरचना और नैतिकता—भारतीय समाजशास्त्र नैतिकता और कर्तव्य पर आधारित था। समाज को चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) में विभाजित किया गया था।[3] मनुस्मृति (6.92) में कहा गया है—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥"

(मनुस्मृति 4.138)

अर्थ—सत्य बोलो, प्रिय बोलो, परंतु अप्रिय सत्य मत बोलो। प्रिय बोलो, किंतु झूठ मत बोलो। यही सनातन धर्म है।

राजनीतिक शास्त्र में शासन और नैतिक नेतृत्व—भारतीय राजनीति "धर्म" पर आधारित थी। राजा को "धर्मराज" कहा गया और उसका उद्देश्य प्रजा की सेवा और न्याय देना था।[4] महाभारत (शांति पर्व) में कहा गया है—

"राज्यं हि विद्वद्भिरनार्यरूपं,
तस्मात् सदा धर्मपराः भवंति।"

(महाभारत, शांति पर्व 56.15)

अर्थ—राज्य को विद्वानों ने दुष्ट स्वभाव का बताया है, इसलिए शासकों को सदैव धर्मपरायण रहना चाहिए।

दार्शनिक दृष्टिकोण से भारतीय ज्ञान परंपरा का योगदान—भारतीय ज्ञान परंपरा केवल भौतिक शासन तक सीमित नहीं रही, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों को भी प्राथमिकता दी। बौद्ध और जैन परंपराओं ने अहिंसा, करुणा, और सह-अस्तित्व को बढ़ावा दिया।[5] उपनिषदों में आत्मानुभूति और आत्म-संयम पर बल दिया गया है।

"आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।"

(महाभारत, अनुशासन पर्व 113.8)

अर्थ—जो व्यवहार अपने लिए प्रतिकूल हो, वह दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र और राजनीतिक शास्त्र का एक व्यापक और गहन दर्शन मिलता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, यह परंपरा समाज और शासन को नैतिकता और कर्तव्य पर आधारित रखती आई है। आधुनिक संदर्भ में, यदि इन मूल्यों को पुनः स्थापित किया जाए, तो समाज में संतुलन, न्याय, और नैतिकता को बनाए रखा जा सकता है।

समाजशास्त्र में भारतीय ज्ञान परंपरा का योगदान

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र का विकास न केवल सामाजिक संरचना और व्यवहारिक नियमों के रूप में हुआ, बल्कि इसमें नैतिकता, सह-अस्तित्व और लोक कल्याण को भी महत्व दिया गया। समाजशास्त्र के विभिन्न पहलुओं जैसे जाति, धर्म, पारिवारिक संरचना, नैतिकता और समाज सुधार पर भारतीय ग्रंथों में विस्तृत चर्चा मिलती है।

समाजशास्त्र के मूल सिद्धांत

सामाजिक संरचना—भारतीय समाज में वर्ण और जाति व्यवस्था का उल्लेख वेदों, उपनिषदों, महाभारत और मनुस्मृति में मिलता है। समाज को चार प्रमुख वर्णों में विभाजित किया गया था—ब्राह्मण (ज्ञान और शिक्षा), क्षत्रिय (शासन और सुरक्षा), वैश्य (व्यापार और कृषि) और शूद्र (सेवा)।

लिंग संरचना—भारतीय समाज में महिलाओं को प्रारंभिक वैदिक काल में उच्च स्थान प्राप्त था। वे शिक्षित थीं और सामाजिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। लेकिन समय के साथ उनकी स्थिति में परिवर्तन आया।[6] महाभारत में नारी सम्मान का महत्व बताया गया है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥"

(मनुस्मृति 3.56)

अर्थ—जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं; जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं।

पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था

संयुक्त परिवार और सामुदायिक जीवन—भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की अवधारणा प्राचीन काल से ही विद्यमान है, जहाँ परिवार एक आर्थिक, सामाजिक, और नैतिक इकाई के रूप में कार्य करता था। सामुदायिक सहयोग, आपसी सहायता, और नैतिक अनुशासन संयुक्त परिवार की विशेषताएँ थीं।

नैतिक मूल्य और सामाजिक जिम्मेदारी—महाभारत और रामायण में बताया गया है कि व्यक्ति का नैतिक आचरण समाज के हित में होना चाहिए। "धर्म" केवल धार्मिक कृत्यों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्वों को भी निर्धारित करता था।

भारतीय ज्ञान परंपरा में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य

नैतिक शिक्षा और सहिष्णुता—भारतीय समाज सहिष्णुता, समानता और न्याय के मूल्यों पर आधारित रहा है। उपनिषदों और महाभारत में बताया गया है कि सभी जीवों में आत्मा समान है, इसलिए सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए।[7]

"आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।"

(महाभारत, अनुशासन पर्व 113.8)

अर्थ—जो व्यवहार अपने लिए प्रतिकूल हो, वह दूसरों के साथ मत करो।

सामाजिक न्याय और सहयोग—रामायण और महाभारत में सहयोग और कर्तव्य की भावना पर बल दिया गया है। उदाहरण के लिए, महाभारत में कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देते हैंः—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥"

(भगवद्गीता 2.47)

अर्थ—तेरा कर्म करने में अधिकार है, लेकिन फल पर नहीं। इसलिए कर्म को फल की इच्छा से मत कर और अकर्मण्यता से मत चिपक। यह विचारधारा समाज में निष्काम सेवा और परोपकार की भावना को बढ़ावा देती है।

समाज सुधार एवं पुनर्निर्माण में योगदान

अंधविश्वास और जातिगत भेदभाव के खिलाफ नैतिक शिक्षा—वैदिक और उपनिषदकालीन शिक्षा में बताया गया है कि सच्चा ज्ञान वही है जो तर्क, नैतिकता और समाज के कल्याण के लिए हो। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने जातिगत भेदभाव और अंधविश्वास के विरुद्ध आवाज उठाई। महात्मा बुद्ध ने कहा—

"न जाति न उपाधिभिः, गुणैः एव ब्राह्मणो भवति।"

(सुत्तपिटक)

अर्थ—कोई व्यक्ति जन्म से नहीं, बल्कि अपने गुणों से ब्राह्मण बनता है।

समाज में महिलाओं और निम्न वर्गों के सशक्तीकरण में योगदान—भारतीय ज्ञान परंपरा में महिलाओं और वंचित वर्गों को शिक्षा और सशक्तीकरण का अधिकार दिया गया था। ऋग्वेद में कई विदुषियों जैसे गार्गी और मैत्रेयी का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने दार्शनिक चर्चाओं में भाग लिया।[8]

"श्रद्धावाँ लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥"

(भगवद्गीता 4.39)

अर्थ—जो श्रद्धावान, संयमी और ज्ञान के प्रति समर्पित है, वही ज्ञान प्राप्त करता है और उसे प्राप्त कर शीघ्र ही परम शांति प्राप्त होती है।

यह सिद्धांत महिलाओं और वंचित वर्गों को शिक्षा और आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रेरित करता है।

सामाजिक परिवर्तन और चरित्र निर्माण—भारतीय ज्ञान परंपरा में आत्म-अनुशासन, संयम और नैतिकता को समाज सुधार के महत्वपूर्ण उपकरणों के रूप में देखा गया है। गांधीजी के विचार "सत्य और अहिंसा" भी इन्हीं परंपराओं से प्रेरित थे।

"अहिंसा परमो धर्मः, धर्म हिंसा तथैव च।"

(महाभारत, अनुशासन पर्व 116.38)

अर्थ—अहिंसा ही परम धर्म है, लेकिन धर्म की रक्षा के लिए कभी-कभी हिंसा भी आवश्यक होती है।

भारतीय समाजशास्त्र की परंपरा केवल समाज की संरचना और उसके कार्यों का विश्लेषण नहीं करती, बल्कि यह नैतिकता, न्याय, और सहयोग पर भी बल देती है। महाकाव्यों, वेदों और पुराणों में वर्णित सामाजिक और नैतिक आदर्श आज भी प्रासंगिक हैं। यदि इन मूल्यों को पुनः जागरूक किया जाए, तो समाज में शांति, समता और न्याय की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि यह आधुनिक समाज सुधार और नीति निर्माण के लिए भी प्रेरणा प्रदान करती है।

राजनीतिक शास्त्र में भारतीय ज्ञान परंपरा का योगदान

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीतिक शास्त्र केवल सत्ता और शासन तक सीमित नहीं था, बल्कि नैतिकता, धर्म, कर्तव्य और नीति को भी शासन का अभिन्न अंग माना गया। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, महाभारत, रामायण, मनुस्मृति और बौद्ध-जैन ग्रंथों में राजनीतिक व्यवस्था और नीतियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस भाग में भारतीय राजनीतिक शास्त्र का ऐतिहासिक विकास, नैतिक शासन सिद्धांत, प्रमुख राजनीतिक विचारकों के आदर्श और आधुनिक संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

भारतीय राजनीतिक शास्त्र का ऐतिहासिक विकास

प्राचीन राज्य-व्यवस्था और धर्मराज्य—प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था "धर्मराज्य" के सिद्धांत पर आधारित थी, जिसमें राजा को केवल प्रशासक नहीं, बल्कि लोककल्याणकारी शासन का पालक माना गया। राजा का कर्तव्य था कि वह नीति, न्याय और धर्म का पालन करे और अपनी प्रजा के हित में कार्य करे।

"राजा प्रजानां भर्ता स्याद् यथापिता यथा गुरुः।
सर्वेषां चैव यशसः कर्ता चैव परायणम्॥"

(मनुस्मृति 7.8)

अर्थ—राजा अपनी प्रजा का उसी प्रकार पालन-पोषण करे, जैसे पिता और गुरु अपने बच्चों और शिष्यों का करते हैं।

नीतिशास्त्र और चाणक्य की राजनीतिक शिक्षा—चाणक्य (कौटिल्य) ने "अर्थशास्त्र" में एक संगठित, कुशल और कूटनीतिक शासन की रूपरेखा प्रस्तुत की। उनका राजनीतिक दर्शन यथार्थवादी था, जिसमें शक्ति, नीतिकुशलता और नैतिकता के संतुलन को महत्व दिया गया।

"सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूलं राज्यं, राज्यस्य मूलं इन्द्रियजयः॥"

(अर्थशास्त्र, 1.7)

अर्थ—सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ (धन) है, अर्थ का मूल राज्य है, और राज्य का मूल इंद्रियों पर विजय है। चाणक्य के अनुसार, राजा को न केवल कुशल प्रशासक होना चाहिए, बल्कि उसे अपने इंद्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए और प्रजा के कल्याण हेतु कार्य करना चाहिए।[9]

राजनीतिक नैतिकता एवं शासन के सिद्धांत

धर्म, कर्तव्य और नीति—राजनीति में नैतिकता और धर्म का विशेष महत्व था। महाभारत के शांति पर्व में बताया गया है कि एक शासक को न्याय, सत्य, और परोपकार का पालन करना चाहिए—

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मं न तत्तत्वसुखं न यस्मिन्,
न तत्तथार्हं यदनीन्यमुक्तम्॥"

(महाभारत, शांति पर्व 5.38)

अर्थ—वह सभा सभा नहीं जहाँ वृद्ध और ज्ञानी नहीं हैं; वे वृद्ध नहीं जो धर्म की बातें नहीं करते; और वह धर्म नहीं, जिससे सत्य और सुख प्राप्त न हो।

राजनीतिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य समाज में संतुलन बनाए रखना और न्यायपूर्ण शासन प्रदान करना था।

नीति निर्माण में नैतिकता और दार्शनिकता—नीति निर्माण और शासन में नैतिकता के समावेश पर जोर दिया गया। भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए कहा—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥"

(भगवद्गीता 2.47)

अर्थ—तेरा कर्म करने में अधिकार है, लेकिन फल पर नहीं। इसलिए कर्म को फल की इच्छा से मत कर और अकर्मण्यता से मत चिपक। यह सिद्धांत राजनीतिक नेताओं के लिए यह

संदेश देता है कि उन्हें बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के राष्ट्र और समाज के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

भारतीय राजनीतिक विचारकों के आदर्श

चाणक्य (कौटिल्य)—चाणक्य ने "सप्तांग सिद्धांत" प्रस्तुत किया, जिसमें राज्य के सात प्रमुख अंग—स्वामी (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद (प्रजा), दुर्ग (किले), कोश (राजकोष), सेना और मित्रों की महत्ता बताई गई। उन्होंने कूटनीति और व्यावहारिक राजनीति पर बल दिया।

पतंजलि—पतंजलि ने योगसूत्रों में आत्मसंयम, अनुशासन और नेतृत्व के गुणों पर बल दिया। उनका सिद्धांत था कि एक सशक्त राष्ट्र के लिए उसके नेताओं का आत्मानुशासित होना आवश्यक है।

महात्मा गांधी—गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और ग्राम स्वराज की अवधारणा को राजनीति में लागू किया। उन्होंने "रामराज्य" की संकल्पना प्रस्तुत की, जहाँ न्याय, समानता और परोपकार प्रमुख तत्व थे।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में भारतीय शास्त्रों की प्रासंगिकता

नीति निर्माण और शासन प्रणाली में योगदान—भारतीय ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक सिद्धांत आज भी प्रशासन और नीति-निर्माण के लिए उपयोगी हैं। पंचायती राज प्रणाली, लोक प्रशासन, और सामाजिक न्याय की अवधारणाएँ भारतीय राजनीतिक परंपरा से प्रेरित हैं।

वैश्विक संदर्भ में भारतीय राजनीतिक शास्त्र—आज लोकतंत्र, मानवाधिकार, और न्याय की अवधारणाओं में भारतीय विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। चाणक्य की नीतियाँ आज के कूटनीतिक और प्रशासनिक नेतृत्व के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में राजनीतिक शास्त्र केवल सत्ता प्राप्ति का माध्यम नहीं था, बल्कि यह न्याय, नैतिकता, और कर्तव्य के सिद्धांतों पर आधारित था। चाणक्य, महाभारत, रामायण, और मनुस्मृति में वर्णित शासन सिद्धांत आज भी नीति-निर्माण और प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। आधुनिक संदर्भ में, भारतीय राजनीतिक विचारधारा शासन और कूटनीति में नैतिकता, जनकल्याण और समावेशिता को बढ़ावा दे सकती है। वैश्विक राजनीति में भारत की बढ़ती भूमिका के साथ, भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित राजनीतिक सिद्धांतों को पुनः आत्मसात करने की आवश्यकता है।

समकालीन संदर्भ एवं वैश्विक दृष्टिकोण

भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल अतीत का गौरव है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की नीतियों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है। समकालीन शिक्षा, नीति-निर्माण और वैश्विक सामाजिक-राजनीतिक सुधारों में भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों का समावेश बढ़ रहा है। इस खंड में आधुनिक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और वैश्विक स्तर पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

समकालीन शिक्षा एवं नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेश

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों का महत्व—भारतीय शिक्षा प्रणाली में वेद, उपनिषद, योग, और नीति शास्त्र के सिद्धांतों को पुनः लागू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। "नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020" (NEP 2020) में भारतीय परंपराओं और मूल्यों को शिक्षा में समाविष्ट करने की बात कही गई है। नैतिक शिक्षा और चरित्र निर्माण पर महाभारत और भगवद्गीता की शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं।

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥"

(भगवद्गीता 4.39)

अर्थ—श्रद्धावान, संयमशील और ज्ञान के प्रति समर्पित व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त होता है और वह शीघ्र ही परम शांति प्राप्त करता है। यह श्लोक शिक्षा में आंतरिक प्रेरणा और आत्मसंयम के महत्व को दर्शाता है। आज के शिक्षा मॉडल में यह सिद्धांत आत्म-अनुशासन और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत उपयोगी है।

भारतीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में शास्त्रीय ज्ञान का समावेश—कई भारतीय विश्वविद्यालयों (जैसे काशी हिंदू विश्वविद्यालय, जेएनयू, और नागपुर विश्वविद्यालय) में वेदांत, योग, और संस्कृत अध्ययन को पुनः महत्व दिया जा रहा है। "श्रीमद्भगवद्गीता अध्ययन केंद्र" और "चाणक्य नीति शोध संस्थान" जैसे संस्थान स्थापित किए जा रहे हैं।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) प्रशिक्षण में भी नीति शास्त्र और चाणक्य नीति के सिद्धांतों को शामिल करने की पहल हो रही है।

वैश्विक शिक्षा परिदृश्य में भारतीय नैतिक एवं राजनीतिक सिद्धांत

वैश्विक नैतिक शिक्षा, चरित्र निर्माण एवं सामाजिक न्याय—विश्व के कई प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय (जैसे हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड, और एमआईटी) भारतीय दर्शन और योग को पाठ्यक्रम में शामिल कर रहे हैं। महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत वैश्विक शांति और सामाजिक न्याय के लिए प्रेरणास्रोत बने हैं।

"अहिंसा परमो धर्मः, धर्म हिंसा तथैव च।"

(महाभारत, अनुशासन पर्व 116.38)

अर्थ—अहिंसा परम धर्म है, लेकिन धर्म की रक्षा के लिए कभी-कभी हिंसा भी आवश्यक होती है। यह विचार वैश्विक राजनीति और कूटनीति में नैतिकता और संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय शास्त्रों के योगदान के अवसर और चुनौतियाँ—संयुक्त राष्ट्र (UN) ने योग दिवस (21 जून) को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दी, जो भारतीय ज्ञान परंपरा की वैश्विक स्वीकार्यता को दर्शाता है। नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा के रूप में भगवद्गीता और उपनिषदों के सिद्धांत विश्व के कई देशों में लोकप्रिय हो रहे हैं। हालाँकि, पश्चिमी शिक्षा प्रणालियों में भारतीय दर्शन को वैज्ञानिक और तार्किक रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, ताकि उसकी स्वीकार्यता बढ़े।

समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों में योगदान

भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरित नीतिगत मॉडल—आधुनिक प्रशासन में कई नीतियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरित हैं—ग्राम स्वराज और विकेन्द्रीकरण—महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा पंचायती राज प्रणाली में परिलक्षित होती है। ध्यान और मानसिक स्वास्थ्य—योग और ध्यान को चिकित्सा और स्वास्थ्य नीतियों में सम्मिलित किया जा रहा है।

सतत विकास—भारतीय वैदिक परंपरा में पर्यावरण-संतुलन और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की शिक्षा दी गई है।[10]

"पृथिव्यां त्रिणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥"

(चाणक्य नीति, 15.2)

अर्थ—पृथ्वी पर तीन ही असली रत्न हैं—जल, अन्न और अच्छे विचार; लेकिन मूर्ख लोग पत्थरों को रत्न समझते हैं। यह श्लोक सतत विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता को दर्शाता है।

- वैश्विक स्तर पर भारतीय शास्त्रों का प्रभाव
- राजनीतिक सिद्धांतों में योगदान—चाणक्य की कूटनीति और राज्य प्रबंधन प्रणाली आज भी प्रबंधन और नेतृत्व में प्रासंगिक है। कई देशों के प्रशासनिक मॉडल में भारतीय नीति शास्त्र के तत्व देखे जा सकते हैं।
- सामाजिक न्याय और मानवाधिकार—भगवद्गीता और उपनिषदों के सिद्धांत सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देते हैं। गांधीजी के विचार "मार्टिन लूथर किंग जूनियर" और "नेल्सन मंडेला" जैसे वैश्विक नेताओं को प्रेरित कर चुके हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल प्राचीन ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आज भी शिक्षा, शासन, नीति निर्माण और वैश्विक राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। समकालीन संदर्भ में भारतीय शिक्षा प्रणाली में दार्शनिक मूल्यों का पुनः समावेश किया जा रहा है। वैश्विक स्तर पर भारतीय सिद्धांतों की स्वीकार्यता बढ़ रही है, लेकिन इसे और अधिक वैज्ञानिक और आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आधुनिक समाज में नैतिकता, नीति, और न्याय को संतुलित करने के लिए भगवद्गीता, चाणक्य नीति, और वेदांत के सिद्धांत अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यदि इन्हें समकालीन शिक्षा और नीति निर्माण में समाहित किया जाए, तो वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा का योगदान और प्रभाव और अधिक व्यापक हो सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाजशास्त्र और राजनीतिक शास्त्र का गहरा अंतर्निहित संबंध है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से, यह परंपरा नैतिकता, सामाजिक न्याय, पारिवारिक संरचना, धर्म और सहिष्णुता के सिद्धांतों पर आधारित है। राजनीतिक शास्त्र में, यह धर्म, कर्तव्य, नीति और न्यायपूर्ण शासन

की अवधारणाओं को महत्व देती है। महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और वेदों से प्राप्त शिक्षा, शासन के नैतिक आदर्शों और कूटनीतिक नीतियों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करती है। भगवद्गीता के निष्काम कर्म, चाणक्य की कूटनीति, और महात्मा गांधी के अहिंसा व सत्याग्रह के सिद्धांत आधुनिक समाज और शासन में प्रासंगिक बने हुए हैं।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि एक समृद्ध, नैतिक और सामाजिक रूप से उत्तरदायी समाज के निर्माण की आधारशिला भी है। यदि इन शास्त्रीय सिद्धांतों को समकालीन शिक्षा और नीति निर्माण में प्रभावी रूप से समाहित किया जाए, तो यह समाज को अधिक न्यायसंगत, सहिष्णु और नैतिक रूप से समृद्ध बना सकता है। वैश्विक स्तर पर, भारतीय दर्शन और राजनीतिक विचारधारा शांति, सह-अस्तित्व, और सतत विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, भारतीय राजनीति का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.सं. 55
2. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दार्शनिक परंपरा, भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली, 1999, पृ.सं. 130
3. शुक्ल, रामचन्द्र, भारत में राजनीति का विकास, ज्ञानमाला प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.सं. 88
4. झा, सूरज मोहन, समाजशास्त्र और भारतीय समाज, भारतीय ज्ञान निधि, दिल्ली, 2010, पृ.सं. 120
5. भारती, धर्मवीर, भारत में राजनीतिक विचारधाराएँ, ज्ञानोदय प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ.सं. 225-240
6. कुमार, कृष्ण, भारतीय समाजशास्त्रः इतिहास और परिप्रेक्ष्य, विश्व प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ.सं. 110
7. सिंह, विनय कुमार, समाजशास्त्र की भारतीय दृष्टि, महेन्द्र प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ.सं. 170
8. कुमार, नरेंद्र, राजनीतिक दर्शन : भारतीय दृष्टिकोण, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ.सं. 135
9. झा, आर.एन., समाजशास्त्र और भारत, मणिपाल विश्वविद्यालय प्रेस, मणिपाल, 2006, पृ.सं. 100
10. शर्मा, उमेश, भारतीय सामाजिक संरचना, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2013, पृ.सं. 130
11. ऋग्वेद (10.90.12)
12. महाभारत (शांति पर्व 5.38, शांति पर्व 56.15, अनुशासन पर्व 113.8, शांति पर्व 5.38, अनुशासन पर्व 116.38)
13. अर्थशास्त्र (1.7, 15.2)
14. मनुस्मृति (4.138)
15. भगवद्गीता (2.47, 4.39)